

झुलसते स्वर्ग में उभरती/जागती उम्मीदें

—संत समीर

प्रतिष्ठित पत्रकार और समाज-कर्मि

‘धरती का स्वर्ग’ कहते ही कश्मीर की हरी-भरी वादियों की नयनाभिराम दृश्यावलियाँ आँखों में तैरने लगती हैं। आँखों को ही नहीं, विरासत गवाह है कि मन को भी बौद्धिक तोष प्रदान करने वाला अद्भुत वातावरण कश्मीर ने सृजित किया है। कश्मीर की हवाओं में गूँजते धर्म-अध्यात्म, साहित्य, कला, संगीत के संदेशों की अनुगूँज को देश ही नहीं दुनिया भर में सुना गया है। आश्चर्य नहीं है कि भारतीय मेधा के चरम उत्कर्ष के चिह्न यहाँ के खंडहर हो चुके अवशेषों में आज भी देखे और महसूस किए जा सकते हैं। ढाई हजार साल पहले आदि शंकराचार्य अगर दक्षिण से चलकर उत्तर के इस भूखंड तक पहुँचना जरूरी समझ रहे थे, तो मतलब यही है कि कश्मीर की हस्ती कुछ खास रही है।

अपने समय के प्रसिद्ध विद्वान् और क्रांतिधर्मी लेखक क्षितीश वेदालंकार जी ने ‘कश्मीर: झुलसता स्वर्ग’ के रूप में धरती के इस स्वर्ग के नरक कुंड बनते जाने की व्यथा-कथा का बहुत हृदयस्पर्शी वर्णन किया है। यह पुस्तक वेदालंकार जी के कश्मीर पर लिखे क्रमशः संपादकीय अग्रलेखों का संग्रह है। सन् 1990 में जब यह प्रकाशित हुई तो इसने बुद्धिजीवी समाज को कश्मीर समस्या पर खूब उद्बलित किया। आज जब इस पुस्तक को पुनः—प्रस्तुत किया जा रहा है, तो इसके पुनःपाठ की प्रासंगिकता और अधिक बढ़ती हुई दिखाई दे रही है; क्योंकि इस पुस्तक से गुजरते हुए कश्मीर समस्या की जड़ पकड़ में आती है।

कश्मीर को भारत का अभिन्न अंग कहने के आधार पर, और इसे स्वर्ग से नरक बनाने वाले कुछ पहलुओं पर एक सरसरी निगाह डाल लेना यहाँ आवश्यक है।

कश्मीर सिर्फ भौगोलिक वजहों से ही भारत का ताज नहीं है, यह अपनी समृद्ध और विविधतापूर्ण परंपराओं की दृष्टि से भी भारत के इतिहास का गौरवशाली अध्याय है। ज्ञान की ऐसी परंपरा का उदाहरण शायद ही संसार के इतिहास में किसी और प्रदेश में मिलता हो। कल्हण को महाकवि कहें या इतिहासकार, उन्होंने इसी प्रदेश में बैठकर यहाँ की समृद्ध परंपरा को ‘राजतरंगिणी’ के रूप में लिखा। भारतीय साहित्यशास्त्र के मूर्धन्य आचार्य, कश्मीरी शैव और तंत्र के पंडित तथा दार्शनिक अभिनव गुप्त, महाकवि कालिदास, महाभाष्य के लेखक पतंजलि, कैयट, मैय्यट और जैय्यट जैसे टीकाकार कश्मीर

की ही देन हैं। बिल्हण, जल्हण, क्षेमेंद्र, वसुगुप्त, मम्मट, भीमभट्ट, दामोदर गुप्त, रत्नाकर, वल्लभ देव, सोमदेव, जयद्रथ जैसे विद्वानों की कर्मस्थली कश्मीर ही है। भारतीय इतिहास के गौरव रूप कश्मीर के ऐसे पंडितों के साथ-साथ वहाँ के तीर्थ-स्थलों पर भारतीयों की श्रद्धा का उल्लेख भी इस पुस्तक में किया गया है।

पंडितजी की इस पुस्तक से प्रेरित होकर मन में यह जिज्ञासा उठती है कि 'ऐसे गौरवशाली अतीत के बाद धीरे-धीरे कश्मीर रक्तरंजित विडंबनाओं की धरती कैसे बना? और किन दुर्गत शक्तियों ने हमारे देश की प्रतिभा को हड़प लिया?' वर्तमान परिस्थितियों को देखते हुए भी इसकी खोज करना आवश्यक लगा, तो कुछ ऐसे तथ्य ज्ञात हुए, जिनके उल्लेख से वैदिक-धर्मियों व भारत-प्रेमियों को आगे के लिए सावधान रहने की दिशा और शिक्षा मिलेगी।

कश्मीर के दुर्दिन शुरू हुए सन् 1315 में, जब शाह मीर नाम के एक मुस्लिम शरणार्थी युवक को वहाँ के राजा उदयदेव ने शरण दी। और, जिस पड़ोसी मुस्लिम राज्य से वह भागकर आया था, उसके बारे में जानकारी रखने के लिए उस मीर को राजा ने परामर्श-मंडल में स्थान देने की भूल की। उस धूर्त ने संस्कृत भी सीखी; और धीरे-धीरे राज्य के असंतुष्टों के सहयोग से हिंदू-आधिपत्य की समाप्ति करके 1339 में अपना शासन स्थापित कर लिया। उसका राजतिलक संस्कृत-मंत्रोच्चार के साथ हुआ। फिर तो तलवार के बल पर धर्म-परिवर्तन का भयावह अभियान चलाया जाने लगा। यह तथ्य क्या आज के उन भारतीयों की आँखें खोलेगा, जो एक नहीं, लाखों रोहिंग्याओं को शरण देने की वकालत करते हैं?

इस मुस्लिम शासक के बाद तो आक्रांताओं का ताँता ही लग गया। उन सभी के शासन-काल का अधिकांश समय कश्मीरी हिंदुओं, खासतौर से कश्मीरी पंडितों के लिए पीड़ादायी रहा। ध्यान रहे, कश्मीर में पंडित शब्द महज जातीय पहचान तक सीमित नहीं है। पंडित का अर्थ विद्वत्ता की समृद्ध परंपरा से है। कश्मीर में विद्वत्-समाज का वैसा ही बोल-बाला रहा है, जैसा कि कालांतर में काशी में। इस्लाम के अनुयायी ज्यादातर आक्रांताओं को हिंदू ज्ञान-परंपरा से चिढ़ थी। उन्होंने हिंदू ज्ञान परंपरा के स्रोतों और पूजा स्थलों को बुरी तरह से नष्ट किया। कश्मीरी पंडितों को कई बार पलायन का दंश झेलना पड़ा। 1990 का नरसंहार और पलायन उसी बर्बरता की सातवीं कड़ी था।

पहला बड़ा पलायन सुल्तान सिकंदर के समय (14वीं सदी के अंत) में हुआ था। वह 'बुतशिकन' के रूप में मशहूर था। उसने बड़े पैमाने पर हिंदुओं का

कत्लेआम कराया। बर्बरता इस हद तक की गई थी कि उस समय कश्मीर में हिंदुओं के सिर्फ ग्यारह परिवार ही जैसे-तैसे बच पाए थे। शेष सबको मार दिया गया था या वे वहाँ से पलायन कर गए थे। जबर्न धर्म परिवर्तन तो खैर बड़े पैमाने पर कराया ही गया था। इसका वजीर सैफ-उद-दीन, जो पहले ब्राह्मण सुहा बट था, बहुत क्रूर सिद्ध हुआ, सारस्वत ब्राह्मणों पर विशेष रूप से। हसन और लौरेंस के कथनानुसार इस्लाम कबूलने वाले ब्राह्मणों के छह-छह मन, और मारे गए ब्राह्मणों के सात-सात मन जनेउओं को यह रोज जलवाता था।

दूसरा बड़ा पलायन: इसी सिकंदर के बेटे अली शाह (1413-20) ने अपने बाप के अत्याचारी वजीर और उसकी परंपरा को कायम रखा। अब उसने जजिया कर और लगा दिया। उसने ईद के दिन ब्राह्मणों की धार्मिक यात्राओं पर रोक लगा दी। अनेक ब्राह्मणों ने धर्म-परिवर्तन न करके स्वयं को जला दिया, जहर खाया या फाँसी पर लटक गए। अनेक अपना प्यारा कश्मीर छोड़कर पलायन कर गए। देश छोड़ने वाले ऐसे कश्मीरियों को भी इसने अपने सैनिकों से मरवाया। या वे रास्ते की कठिनाइयों से, साँपों के काटने आदि से मारे गए।

अगला शासक 'सुल्तान जैनुल आब्दीन', इसी सिकंदर बुतशिकन का दूसरा पुत्र था, जिसने अपने पिता की गलतियों को माना और एक तरह से प्रायश्चित्त किया। सुल्तान ने एक हिंदू-पंडित श्रीभट्ट के समझाने पर कश्मीरी पंडितों की फिर से घर वापसी कराई। इसके समय कश्मीर की जनता ने जरूर कुछ सुकून की साँस ली; और हिंदू धर्म पर अत्याचार बंद हुए। उसने कुछ तोड़े गए मंदिरों का पुनर्निर्माण भी कराया।

तीसरा बड़ा पलायन: शिया संप्रदाय के काजी चक (=शक, 1506-85) के शासन में यही हालात रहे। के. ऐल. भान अपनी पुस्तक, 'Paradise Lost' (गुमशुदा स्वर्ग) में लिखते हैं, "चक शासक न केवल क्रूर थे, वे कश्मीरी पंडितों पर जुल्म करने के नए-नए तरीके ईजाद करने में माहिर थे। धर्म-परिवर्तन से बचने के लिए अनेक हिंदुओं ने कश्मीर से पलायन किया। इस शासक ने कश्मीर की संस्कृति और पहचान को पूरी तरह बदलने का काम किया।"

चौथा बड़ा पलायन: 17वीं सदी में औरंगजेब ने सभी कश्मीरी पंडितों को इस्लाम कबूल कराने का आदेश दिया। उस समय कश्मीरी पंडितों के प्रतिनिधि थे कृपाराम। वे सिखों के गुरु तेग बहादुर के आनंदपुर साहिब स्थित दरबार में पहुँचे और उनसे इस मुसीबत से बाहर निकालने का निवेदन किया। गुरु तेगबहादुर अपने साथ पाँच संगियों (जिनमें तीन कश्मीरी पंडित थे,) को लेकर

दिल्ली पहुँचे। जब गुरुजी ने मुगल सम्राट औरंगजेब के आदेश पर इस्लाम स्वीकार करने से इनकार कर दिया तो 11 नवंबर, 1675 को उन्हें मौत की सजा दे दी गई। हालाँकि इसके बाद कश्मीरी पंडितों का पलायन भी रोक दिया गया। भारतीय हिंदुओं के रक्षक ऐसे सिक्ख गुरुओं के इन्हीं सेनानियों का आज एक पृथक् खालिस्तान पाने के लिए आतंकी मुस्लिमों से जुड़ना उनके झूठे अहंकार को ही दर्शाता है।

पाँचवाँ बड़ा पलायन अफगान पठानों के 66 वर्षीय शासन काल में हुआ। 1752 में पठानों ने धावा बोला था। पठानों का शासन-काल सबसे बर्बर कहा जाता है। पठानों के समय में अनिगिनत कश्मीरी पंडितों को डल झील में डुबो दिया गया; और ऊपर से बोरों में भर-भरकर उनके जनेउओं को। उन पर जजिया कर भी लगाया गया। सन् 1819 में महाराजा रणजीत सिंह की सेना ने कश्मीर पर कब्जा जमाया और कुछ समय बाद यह डोगरा शासन के अधीन हो गया। इसी शासन के अंतिम शासक थे राजा हरि सिंह। इनका शासन 1947 में कश्मीर के भारत में विलय के साथ समाप्त हुआ।

छठा बड़ा पलायन हुआ 1947 में, जब पाकिस्तान की ओर से कबायलियों ने कश्मीर पर धावा बोला। 'झुलसता स्वर्ग' में कश्मीर की तब की व्यथा-कथा को दर्शाया गया है कि जब सन् 1947 में देश दो भागों में बँटा। तब क्या हुआ था? 1948 में यूनाइटेड नेशंस में यह मामला कैसे पहुँचा? 1949 में धारा 370 का प्रवेश भारत के संविधान में कैसे हुआ? 1950 में क्या हुआ? 1952 में जो दिल्ली समझौता हुआ, उसका जुगराफिया क्या था? 1954 में आदेश क्या आया था? 1956 में जम्मू-कश्मीर का जो संविधान बना, उसमें कौन-सी विशेषताएँ थीं? 1963 में किस तरह के परिवर्तन हुए? पंडितजी की पुस्तक पढ़ते हुए ये तमाम चीजें स्पष्ट होती जाएँगी।

सातवाँ बड़ा पलायन: यह सबसे बड़ा और भयावह पलायन हुआ जनवरी, 1990 में, जब लाखों कश्मीरी पंडितों को रातोंरात अपना घर-परिवार छोड़कर भागना पड़ा। इस तरह से धरती का यह स्वर्ग धीरे-धीरे नरक कुंड में तब्दील होता गया। पंडित क्षितीश जी ने इसी सातवें पलायन का सटीक वर्णन इस पुस्तक में किया है। इसको पढ़ने से आप आश्चर्य हो जाएँगे कि कश्मीर की समस्या वास्तविक है; और तुरंत निदान माँगती है। यद्यपि पुस्तक में समस्या के कारण और उसके समाधान के सुझाव शामिल हैं, तथापि यहाँ कुछ बातों का संकेत उचित होगा।

वास्तव में वर्तमान समस्या की जड़ भारत-विभाजन की प्रक्रिया में है। 1947 में 'इंडियन इंडिपेंडेंस ऐक्ट' ब्रिटेन की संसद में पारित हुआ। उसी ऐक्ट के तहत भारत को खंडित किया गया। इस ऐक्ट के लागू होते ही देशी रियासतें भारत या पाकिस्तान के साथ मिलने के लिए स्वतंत्र हो गईं। पाकिस्तान में कश्मीर के विलयन के लिए जिन्ना ने दाँव-पेंच चलाना शुरू किया, पर उन्हें कामयाबी नहीं मिली। कश्मीर के महाराजा हरि सिंह भारत या पाकिस्तान में अपने राज्य का विलय नहीं करना चाहते थे। वे स्वतंत्र रहना चाहते थे। उनका सपना था कि वे कश्मीर को एशिया का स्विट्जरलैंड बनाएँगे।

1947-48 के काल-खंड में कश्मीर को लेकर भारत और पाकिस्तान के बीच जो घटना-क्रम चला, उसका इस पुस्तक में रोमांचक वर्णन है। कैसे पाकिस्तानी सेना के अफसरों की अगुवाई में कश्मीर पर हमला हुआ; कैसे राजा हरि सिंह को मजबूर होकर भारत से सहायता की गुहार लगानी पड़ी; कैसे नाटकीय ढंग से रातों रात कश्मीर के भारत में विलय के 'इंस्ट्रुमेंट ऑफ एक्सेशन' पर हस्ताक्षर हुए; और कैसे भारतीय वायुसेना को श्रीनगर हवाई अड्डे पर पहुँचने में यदि कुछ ही घंटों की देर हो जाती तो श्रीनगर भारत के हाथ से निकल जाता।

1947-48 के घटनाक्रम के साथ ही उस समय के शीर्षस्थ नेताओं की भूमिका पर भी पुस्तक विशेष प्रकाश डालती है। जिन्ना ने तो कश्मीर हथियाने के लिए सभी प्रकार के दाँव-पेंच आजमाए ही। शेख अब्दुल्ला ने गिरगिट की तरह रंग बदले। पंडित नेहरू की विभाजन के समय, और उसके कई वर्ष बाद तक भी, शेख से विशेष मित्रता रही। भारत के अंतिम वाइसराय माउंटबेटेन का व्यवहार भी भारत के हित में रहा हो, यह संदिग्ध है। यदि सरदार पटेल निर्णायक रुख न अपनाते तो संभव था कि माउंटबेटेन इंस्ट्रुमेंट ऑफ एक्सेशन पर समय रहते हस्ताक्षर ही न करते।

कश्मीर के संबंध में नेहरू जी की अदूरदर्शिता के कई उदाहरण हैं। 2 नवंबर, 1947 को नेहरू ने एक भाषण दिया, जिसमें उन्होंने कहा—“जैसे ही शांति कायम होगी, वैसे ही हम जम्मू-कश्मीर में जनता की राय लेंगे और जनता की राय से ही फैसला करेंगे।” कश्मीर की समस्या को जटिल बनाने में नेहरू का यह भाषण सबसे दुर्भाग्यपूर्ण पहलू रहा है, जिसका संदर्भ लेकर पाकिस्तान अक्सर तलवार भाँजने की कोशिश करता रहता है; और कश्मीर के अलगाववादी जनमत संग्रह की बात उठाते रहते हैं। ऐसा लगता है कि पं. नेहरू 'गुटनिरपेक्ष नेता की अपनी वैश्विक पहचान बनाए रखने, सदाशयी, विनम्र बने

रहने तथा साम्राज्यवादी दिखने से खुद को बचाने की आदर्शवादी उलझन में' यह चूक कर बैठे थे।

नेहरू जी ने संयुक्त राष्ट्र पर भरोसा किया कि संभवतः वह समस्या सुलझाने में सबसे बड़ा मददगार होगा। 31 दिसंबर, 1947 को भारत सरकार संयुक्त राष्ट्र पहुँची और चैप्टर-6 के तहत एक शिकायत दर्ज की गई। गनीमत यह रही कि नेहरू जी ने शिकायत चैप्टर-7 के बजाय चैप्टर-6 के तहत दर्ज कराई, अन्यथा संयुक्त राष्ट्र का जो भी फैसला होता, उसको मानना भारत की बाध्यता हो जाती। संयुक्त राष्ट्र में सुरक्षा परिषद की जब बैठक हुई तो अमेरिका और इंग्लैंड का भी असली चेहरा स्पष्ट होने लगा। इन दोनों देशों ने स्पष्ट रूप से भारत के खिलाफ अपनी राय रखी। इससे नेहरू काफी दुखी हुए कि जिन पर उन्होंने विश्वास किया, उन्होंने ही उन के साथ धोखा किया।

अंततः 31 दिसंबर, 1948 को संयुक्त राष्ट्र प्रस्तावित सीजफायर को अंतिम रूप दिया गया; और 1 जनवरी, 1949 से युद्ध विराम लागू हो गया। इस प्रकार, 27 अक्टूबर, 1947 से 31 दिसंबर, 1948 तक, करीब सवा साल युद्ध चला। जिस स्थिति में युद्ध रुका, उस स्थिति के हिसाब से कश्मीर का लगभग 35 प्रतिशत हिस्सा पाकिस्तान के कब्जे में और बाकी का 65 प्रतिशत हिस्सा भारत के कब्जे में रहा। यह बताना जरूरी है कि अगर नेहरू थोड़ी समझदारी दिखाते और संयुक्त राष्ट्र पर अंधविश्वास न करते, तथा सेना को कुछ और समय दे देते, तो एक-दो महीने के बाद शायद पूरा कश्मीर भारत का होता।

कश्मीर विवाद के और भी तमाम महत्वपूर्ण पहलू हैं। पाकिस्तान द्वारा संयुक्त राष्ट्र के निर्देशों की अवहेलना, एलओसी, एलएसी, आजाद कश्मीर वगैरह के मुद्दे हैं, जिनके बारे में 'कश्मीर: झुलसता स्वर्ग' के पन्ने पलटते हुए पाठकों की दृष्टि साफ होती जाएगी।

देश में जब तक आतंकवाद की मौजूदगी रहेगी, तब तक कश्मीर समस्या के मर्म को भी समझने की जरूरत बनी रहेगी। ध्यान देने वाली बात यह है कि इसी पुस्तक में कश्मीर समस्या के समाधान के लिए भी अनेक सुझाव दिए गए हैं। संतोष का विषय है कि इनमें से कुछ महत्वपूर्ण सुझावों पर, पुस्तक प्रकाशन के लगभग तीस वर्ष बाद ही सही, अमल हुआ है। **जैसे धारा-370 का निरस्त होना!**

कश्मीर समस्या को देश के लिए इतना भयानक नासूर बनाने में धारा-370 की बहुत बड़ी भूमिका रही है। यह धारा शेख अब्दुल्ला के आग्रह पर पंडित

नेहरू ने भारतीय संविधान में जुड़वाई थी। इस धारा के चलते कश्मीर भारत की मुख्य धारा से अलग-थलग था। कश्मीर के राजनेता इस धारा का दुरुपयोग अपने स्वार्थों के लिए कर रहे थे। 5 अगस्त, 2019 की तारीख भारत के लिए गौरव-दिवस से कम नहीं है, जबकि कश्मीर को विशेष राज्य का दर्जा देने वाली संविधान की अनपेक्षित धारा-370 को हमेशा-हमेशा के लिए मिटा दिया गया। सबसे अच्छी बात यह है कि कश्मीर समस्या के अंत की सबसे बड़ी शुरुआत हो चुकी है। कोढ़ में खाज जैसी धारा-370 को भारतीय संविधान के दायरे में रहकर ही समाप्त कर दिया गया है। मोदी सरकार का यह समझदारी भरा कदम भारत के इतिहास का स्वर्णिम अध्याय बनेगा।

कश्मीर भी अब देश के अन्य राज्यों जैसा ही हो गया है। इसका नतीजा है कि वहाँ आए दिन होने वाली पत्थरबाजी की घटनाएँ समाप्तप्राय हैं। आतंकवादियों की घुसपैठ में भी कमी आई है। आम कश्मीरी अब खुद को देश के ज्यादा करीब महसूस कर रहे हैं। इस बात की भी आजादी मिल गई है कि कश्मीर में अब देश के दूसरे हिस्सों के लोग भी जमीनें खरीद सकते हैं। नागरिकों को वोट डालने का संपूर्ण अधिकार मिला है, तो चुनाव प्रक्रियाएँ वैसे ही संचालित की जाएँगी, जैसे देश के बाकी हिस्सों में। विकास के काम भी अब वहाँ तेजी से आगे बढ़ते दिखाई दे रहे हैं।

बहरहाल, धारा-370 की समाप्ति को कश्मीर समस्या का संपूर्ण हल मान लेना एकदम सही नहीं होगा। पाकिस्तान किसी भी हाल में भारत के इस संवैधानिक बदलाव को स्वीकार करने को तैयार नहीं है। उसका राग वही है कि हम कश्मीर को लेकर रहेंगे। जाहिर है वह आतंकवाद के नए-नए चेहरे तैयार करने की कोशिश करेगा। मूल बातें आज भी वही हैं, पाकिस्तान की चालबाजियाँ वही हैं, आतंकवादियों के सपने वही हैं। धारा-370 की समाप्ति हमारी बड़ी उपलब्धि है, पर समाधान के ताने-बाने में कुछ धागे पिरोने अभी बाकी हैं।

इस संदर्भ में हाल ही में मार्च, 2022 में आई फिल्म 'द कश्मीर फाइल्स' ने कश्मीरी पंडितों के नरसंहार का कड़वा यथार्थ दिखाकर एक बार फिर इस बहस को तेज कर दिया है कि 'कश्मीर के आतंकवाद की जड़ों को तलाशना है, तो आतंकवादियों के दिमागों में भरे गए मजहबी जहर की भी शिनाख्त करनी होगी'। इस फिल्म में सच का दस-पंद्रह फीसदी ही दिखाया गया है। फिल्म देखते हुए स्पष्ट होता जाता है कि उस पूरी क्रूरता और एक पूरी कौम को अपनी जमीन से पलायन करने पर मजबूर कर देने की घटना

में मानवीयता-अमानवीयता का कोई मामला था ही नहीं, बल्कि इस्लाम और कुरान की व्याख्याएँ काम कर रही थीं।

अजब है कि जो लोग धर्म को अफीम कहते थकते नहीं, वे पाकिस्तान पोषित कश्मीर के आतंकवाद में धर्म को शामिल करने से गुरेज करते हैं। प्रगतिशील इतिहासकारों और सांप्रदायिक सद्भाव के छद्म पैरोकारों ने तथ्यों को लगातार छिपाने की कोशिश की है; और समस्या की असली जड़ों की शिनाख्त में बाधा पहुँचाई है। कड़वी सच्चाई यही है कि इस आतंकवाद की शिनाख्त बिना धर्म के संभव ही नहीं है। धर्म को अनुपस्थित कर दीजिए, पूरा इस्लामी आतंकवाद समाप्त हो जाएगा। पाकिस्तान कश्मीर में आतंकवाद को पोषित कर पाया तो उसकी सबसे बड़ी वजह इस्लामीकरण और गजवा-ए-हिंद जैसी कुरान की व्याख्याएँ हैं। जाहिर है, अगर दूसरे धर्मों की अपेक्षा मुसलमान युवक आतंकवाद की ओर आसानी से कदम बढ़ाते दिखाई देते रहे हैं, तो इसकी सबसे बड़ी वजह यही है कि कुरान को आतंकवाद के पक्षधर के रूप में उनके सामने पेश किया जाता रहा है।

शुभ संकेत है कि 'द कश्मीर फाइल्स' के बहाने ही सही, उस समय के चश्मदीद रहे कुछ कश्मीरी मुसलमानों ने सामने आने की हिम्मत दिखाई है। उन्होंने उस समय की घटनाओं का वर्णन किया है, जबकि उनके अपने गाँव में कश्मीरी पंडितों को आतंकवादियों ने एक तरफ से मौत के घाट उतार दिया था। कुछ मुसलमान महिलाओं ने हिम्मत दिखाते हुए मौलवियों से अपील की है कि हम मुसलमानों को कश्मीरी हिंदुओं के दर्द को महसूस करना चाहिए; और उनसे माफी माँगनी चाहिए कि, 'हमारे ही परिवारों में से कुछ लोगों ने पाकिस्तानी आतंकियों का साथ दिया, कश्मीरी हिंदुओं का बेरहमी से कत्ल किया और उनकी बहू-बेटियों की इज्जत को तार-तार कर दिया'। वास्तव में धर्म का नाम लेकर पनपते इस्लामी आतंकवाद को समाप्त करने में भारतीय मुसलमानों की बड़ी भूमिका हो सकती है। वे कुरान और इस्लाम की सकारात्मक और भाईचारा बढ़ाने वाली व्याख्याएँ दुनिया को दे सकते हैं, क्योंकि भारत के मुसलमानों में एक बड़ी संख्या है, जो सदियों से भाईचारा में जीती रही है।

भविष्य में धर्म की अफीम पिलाकर कश्मीर के मुसलमान युवकों को बरगलाया न जा सके, इसके लिए, पुस्तक के सुझावों के अनुसार, बड़े पैमाने पर सुधार कार्यक्रम चलाने की जरूरत है। ढाँचागत विकास के काम तेज होने चाहिए। शैक्षिक वातावरण को जितना बेहतर किया जाएगा, आतंकवाद की कमर तोड़ने में उतनी ही मदद मिलेगी। कश्मीर में कश्मीरी पंडितों को तो दुबारा बसाया

ही जाए, इसके अलावा अन्य समुदायों के लोगों को भी वहाँ जमीन-जायदाद बनाने को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। संतुलन बनाने के लिए यह जरूरी है। यह हो पाएगा तो हिंदू, मुसलमान सभी सुकून की साँस ले पाएँगे और कश्मीर के लिए फिर से धरती का स्वर्ग बनना ज्यादा दूर नहीं रह जाएगा।

उम्मीद जगी है कि कश्मीर की स्थिति अब फिर से सुधर सकती है तो इस उम्मीद को कमजोर नहीं होने देना चाहिए। सारा दारोमदार भारत के जनमानस और भारतीय नेतृत्व पर है। विश्वास है कि पंडितजी ने इस पुस्तक में जिस **‘झुलसते स्वर्ग’** का दर्द-भरा चित्र उकेरा है, और समस्या के समाधान के जो सुझाव दिए हैं, उसे पढ़कर भारत के नेताओं और अन्य सभी पाठकों को इस दिशा में सक्रिय होने की प्रेरणा मिलेगी।